IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिन्दी साहित्य का आदिकाल : दो दृष्टिकोण (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल व डॉ. बच्चन सिंह)

१. लेखक का व्यक्तव्य

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा में आरंभिक रूप से गार्सा - द - तासी के साथ - साथ अन्य भाषाविद साहित्यिक विद्वानगण यथा - शिवसिंह सेंगर, जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन व मिश्रबंधु आदि साहित्यिक शोधकर्ताओं की अपनी - अपनी महत्ता है। जिन्होंने हिंदी साहित्य के पोषण प्रतिष्ठा में अपने विवेक विचारों से महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्हीं विद्वानों के साथ एक व्यक्तिवाचक संज्ञा 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' के रूप में प्रतिष्ठित होता है जिन्होंने पूर्ववर्ती समस्त साहित्यिक विसंगतियों को समाप्त कर हिंदी साहित्य को तर्कसंगत व नवीन दृष्टि प्रदान की जो आगे चलकर परवर्ती साहित्यिक ग्रंथों की आधारशिला बनी। इनके पश्चात् एक अन्य दूरदर्शी व्यक्तित्व 'डॉ. बच्चन सिंह' हुए जो आचार्य शुक्ल के इतिहास ग्रंथ को चुनौती देते हुए प्रचलित साहित्यिक परिपार्टी के लीक को तोड़ने का साहस करते हैं तथा नए सिरे से साहित्येतिहास की अवधारणा को प्रतिपादित करते हैं। वे साहित्य की परंपरा को आत्मसात् करते हुए समाज की बदलती तस्वीर के सापेक्ष साहित्य की गतिशीलता व इसके प्रवृति परिवर्तन को केंद्रित कर पाठकों के समक्ष एक समालोचना प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रयोजन की पूर्ति हेतु दो साहित्य साधकों के इतिहास ग्रंथ को आधार बनाया गया है। अतः दो भिन्न व्यक्तित्व के साथ आदिकालीन हिन्दी साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से पाठकों में समालोचना की समझ व साहित्य की गहराई को समझने की क्षमता में वृद्धि होगी, यही अपेक्षा करती हूं।

२.भूमिका: तुलनात्मक अध्ययन

(क) हिन्दी साहित्य का इतिहास; आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दी साहित्य के साहित्यकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का स्थान अपना विशेष महत्व रखता है। जो हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन व नामकरण के संदर्भ में सर्वप्रथम सुव्यवस्थित और काफ़ी हद तक तर्कसंगत आधार प्रदान किए।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में सर्वप्रथम हिंदी भाषा में साहित्येतिहास लिखने वाले शिवसिंह सेंगर हुए जिन्होंने **शिवसिंह सरोज** नामक साहित्येतिहास ग्रंथ की रचना सन् १८८३ ई. में की थी। इस ग्रंथ में कवियों व लेखकों के साथ उनकी रचनाओं को व्यवस्थित तो किया गया परन्तु इन्होंने किसी प्रकार से साहित्य का काल विभाजन और नामकरण करने का प्रयास नहीं किया, जो वास्तव में इतिहास लेखन की परंपरा को समझने के लिए एक संगत आधार प्रदान करता है।

इनके पश्चात् अंग्रेजी भाषाविद जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन हुए जिन्होंने अपने साहित्येतिहास ग्रंथ के रूप में **द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान** नामक एक बड़ा कविवृत्त संग्रह सन् १८८९ ई. में निकाला। इनके इतिहास लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये पहली बार कवियों व लेखकों का वर्गीकरण काल - क्रमानुसार प्रस्तुत करते हुए प्रवृत्तियों के आधार पर कालविशेष का नामकरण और काल विभाजन का प्रयास करते हैं। इन सब के बावजूद इनके ग्रंथ में मौलिकता व ऐतिहासिक तर्कसंगतता संबंधी कई प्रश्न उठें।

आगे शुक्ल जी की ओर बढ़ते है तो ज्ञात होता है कि इनके अनुसार सहस्त्रों हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकें देश के अनेक स्थानों पर राजपुस्तकालयों एवं लोगों के घरों में अपनी पहचान छिपाए पड़ी थी। हिन्दी भाषा का प्रचार - प्रसार व साहित्य की प्रतिष्ठा को स्थापित करने का प्रयोजन रखने वाले प्रतिष्ठित काशी की नागरी प्रचारिणी सभा का सर्वप्रथम ध्यान इस ओर मुखर हुआ और इन्होंने सरकार की आर्थिक सहायता से सन् १९०० - १९११ ई. तक सैकड़ों अज्ञात कवियों व उनके ग्रंथों को आठ रिर्पोटों में व्यवस्थित किया। इन्हीं से सामग्री लेकर मिश्रबंधुओं द्वारा सन् १९१३ ई. में एक भारी कवि - वृत्त संग्रह **मिश्रबंधु विनोद** नाम से तीन भागों में प्रकाशित कराया गया। इन्होंने

भी अपने ग्रंथ में काल विभाजन व नामकरण का नूतन प्रयास किया परंतु कवियों व ग्रंथों की संख्या अधिक होने के कारण तर्कसंगत व सुव्यवस्थित विभाजन से चूक गए।

देश के उच्च शिक्षा संस्थानों में जब हिन्दी की प्रतिष्ठा हुई तो शिक्षकों के साथ - साथ छात्रों को भी साहित्येतिहास की एक तार्किक व श्रृंखलाबद्ध अध्ययन की आवश्यकता महसूस हुई ताकि वे समय की विशिष्टता के साथ जनता व समाज की प्रवृत्तियों का साहित्य के परिवर्तनशील प्रवृत्तियों से संबंध स्थापित कर मूल्यांकन कर सकें। साथ ही यह समझ सकें कि परिस्थितियों व प्रभावों की प्रेरणा से काव्यधारा की विभिन्न शाखाओं का प्रस्फुटन हुआ। पूर्वरचित भाषाविदों की ७ - ८ सौ संचित ग्रन्थराशि तो उपलब्ध थी परंतु सूचनाओं की सुगमता एवं उनका सम्यक निरूपण का नितांत अभाव था। कहीं - न - कहीं इन्हीं अभावों के विचार - विमर्श के पश्चात् आचार्य शुक्ल को नये सिरे से साहित्येतिहास लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई। वे कहते हैं - **"भिन्न - भिन्न शाखाओं के हज़ारों कवियों की केवल कालक्रम से गुंथी उपर्युक्त वृत्तमालाएं साहित्य के इतिहास के अध्याय में कहां तक सहायता पहुंचा सकती थी? सारे रचनाकाल को केवल आदि, मध्य, पूर्व, उत्तर इत्यादि खंडों में आंख मूंदकर बाँट देना - यह भी न देखना कि खंड के भीतर क्या आता है क्या नहीं, किसी वृत्तसंग्रह को इतिहास नहीं बना सकता।"१**

पहले से उपलब्ध साहित्येतिहासिक ग्रंथों की सीमितताओं का अध्ययन करते हुए आचार्य शुक्ल जी छात्रों के लिए कुछ संक्षिप्त नोट तैयार किए थे।जिनमें शिक्षित जनसमूह की समाज की परिस्थितियों के अनुरूप बदलती प्रवृत्तियों को लक्ष्य करके हिंदी साहित्य के इतिहास का कालविभाजन व नामकरण का एक आधार तैयार किया गया। इस संदर्भ में वे कहते हैं - **"जिस कालविभाग के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखाई पड़ी है, वह एक अलग काल माना गया और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के स्वरूप के अनुसार किया गया है।"२**

हिन्दी शब्द सागर का लेखन पूर्ण होने के पश्चात् उन्हें ' हिंदी साहित्य का इतिहास ' को एक निश्चित समय के भीतर ही पूरा करना पड़ा। जिसके कारण वे स्वयं स्वीकार करते है कि साहित्येतिहास के लेखन में जितनी सामग्री आवश्यक थी उतनी समायोजित न हो सकीं परंतु काफ़ी हद तक साहित्यिक ग्रंथ को आवश्यक व अनिवार्य उपादान प्रदान किया गया। यद्यपि आचार्य शुक्ल जी के साहित्येतिहास ग्रंथ में भी कुछ अभावों के साथ कई विसंगतियां दृष्टिगोचित होती है तथापि इस यथार्थ को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में आचार्य शुक्ल जी का ग्रंथ एक प्रतिनिधि आधार ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित है। जिसने साहित्य समाज में हिन्दी के साहित्येतिहास को सुनियोजित स्थान प्रदान की।

(ख) हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास; डॉ. बच्चन सिंह

जैसा कि हम सभी जानते हैं इतिहास की मौलिकता व सार्थकता विद्यमान तथ्यों के साथ - साथ गतिशील और परिवर्तनीय प्रवृत्तियों के सम्यक अध्ययन करने में है। ठीक उसी प्रकार साहित्येतिहास लेखन भी एक गत्यात्मक प्रक्रिया है, जिसे समय के साथ बदलती परिस्थितियों व प्रवृत्तियों के आधार पर अपने स्वरूपों में बदलाव लाना अपेक्षित हो जाता है। अतः डॉ. बच्चन सिंह का साहित्येतिहास ग्रंथ ' हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास ' की रचना उपर्युक्त प्रयोजनों की पूर्ति से सरोकार रखता है।

यद्यपि डॉ. बच्चन सिंह, आचार्य शुक्ल के ' हिंदी साहित्य का इतिहास ' की सार्वभौमिक महत्ता को स्वीकार करते हुए मानते है कि शुक्ल जी के इतिहास ग्रंथ को लेकर न तो कोई दूसरा इतिहास लिखा जा सकता हैं न ही उसे छोड़कर । साथ ही वे अपने नए इतिहास के लिए शुक्ल जी के इतिहास को एक चुनौती के रूप में भी स्वीकार करते हैं परंतु ऐतिहासिक रूढ़ता की परंपरा को तोड़ने के लिए और हिन्दी साहित्य के इतिहास के नवनिर्माण की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए वे सभी चुनौतियों को स्वीकार करते हुए आगे बढ़ने के लिए तैयार थे। आचार्य शुक्ल के संदर्भ में वे कहते हैं - " उनसे बहुत कुछ सीखने के साथ ही उनके ऐतिहासिक पैटर्न को तोड़ना होगा। जब रचनात्मक साहित्य पुराने पैटर्न को तोड़कर नया बनता है तो साहित्य के इतिहास पर क्यों न लागू हो? नया पैटर्न बनाना खतरे से खाली नहीं है। नया इतिहास लिखने के लिए यह खतरा उठाना ही होगा।"३

डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार शुक्ल जी का इतिहास ग्रंथ संशोधित व परिवर्धित संस्करण सन् १९४० में आ चुका था। जिसके प्रकाशन के ५० वर्ष के दौरान अनेकानेक शोधग्रंथों के साथ - साथ कई नए साहित्येतिहास लिखे गए जिनमें पर्याप्त सामग्रियों के साथ उनकी अहम महत्ता थी। चूंकि शुक्ल जी का साहित्येतिहास औपनिवेशिक भारत में लिखी गई थी। अतः उनके इतिहास ग्रंथ की सामग्रियां तत्कालीन सामाजिक - सांस्कृतिक संघर्ष, राजनीतिक पृष्ठभूमियों व शासन व्यवस्था सहित कई विषम परिस्थितियों से प्रभावित थी। १९९० के दशक के आसपास स्वतंत्र भारत के साथ - साथ समस्त विश्व में कई ऐतिहासिक परिवर्तन हुए। जैसे - उत्तर औपनिवेशिकता, तीसरी दुनियां, उत्तर आधुनिकता, वैश्विक ग्राम, खुला बाज़ार व संचार माध्यम आदि। जिसके फलस्वरूप हमारे राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों में कई अभूतपूर्व बदलाव लक्षित हुए। अतः समाज के साथ - साथ जनसामान्य की बदलती प्रवृत्तियों को नए संदर्भ में देखना आवश्यक था। इस प्रकार परिवर्तन की इस दशा में इतिहास के कालविभाजन, नामकरण के साथ - साथ मूल्यांकन के विभिन्न मानकों में भी परिवर्तन है। "इसके फलस्वरूप नए पाठक का पुरानी कृतियों से नया रिश्ता बनता है। यह रिश्ता पहले के पाठकों से कृति का जो रिश्ता बना था उससे भिन्न होगा। दोनों रिश्तों में एक प्रकार का मूल्यगत संघर्ष होता है।भाषा, शैली, रूपात्मक प्रयोग भी इतिहास के आधार बनते हैं। इसे नये सिरे से अन्वेषित करने की आवश्यकता है।"४

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में आचार्य शुक्ल के इतिहास ग्रंथ को आधार ग्रंथ मानते हुए एक ओर जहां डॉ. बच्चन सिंह समूचे हिन्दी साहित्य में इनके प्रतिनिधित्व को स्वीकार करते हैं वहीं दूसरी ओर समाज के बदलते परिवेश के अनुसार साहित्यिक रूढ़ता को खंडित करते हुवे नवसृजन का साहस रखते है, जो साहित्य की सार्थकता को प्रतिष्ठित करने के साथ - साथ इसे समझने के लिए एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान करता है।

३.हिन्दी भाषा का उद्भव व विकास

हिन्दी भाषा के अस्तित्व की शुरुआत के संदर्भ में विचार किया जाएं तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने साहित्येतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में इसकी विवेचना सामान्यतः नहीं की है। वही दूसरी ओर डॉ. बच्चन सिंह की बात की जाएं तो उन्होंने अपने साहित्येतिहास 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' में हिन्दी भाषा के उद्भव व विकास की विस्तृत विवेचना **हिंदी भाषा, जाति और साहित्य** शीर्षक के अन्तर्गत की है। जिसमें उन्होंने हिन्दी भाषा के प्रदुर्भाव सम्बंधित प्रचलित मान्यताओं के साथ - साथ प्रसिद्ध भाषाविदों व इतिहासकारों की अवधारणा को सम्मिलित किया है। इसकी विवेचना कुछ इस प्रकार है -

'हिन्द' अथवा 'हिन्दी' शब्द की व्युत्पत्ति

'हिन्द' शब्द की व्युत्पत्ति के संदर्भ में दो मान्यताएं है -

(क) प्राचीनवादी पंडितों का मत - प्राचीनकाल के पंडितों व संतों के मतानुसार 'मेरूतंत्र' नामक संस्कृत ग्रंथ में 'हिंदी' या 'हिन्दू' शब्द का सर्वप्रथम साक्ष्य प्राप्त होता है। जिसमें 'हिन्दू' का अर्थ हीनों (मलेच्छों) को नष्ट करने वाला बनाया गया है।

(ख) भाषाविदों का मत - हिन्दू शब्द का प्राचीनतम उल्लेख 'भारतवर्ष' के संदर्भ में ईरान सम्राट दारा के अभिलेखों, अवेस्था ग्रंथ व बेन्दीदाद आदि में हुआ।

• ईरानी साहित्य में 'स' ध्वनि के साथ महाप्राण ध्वनियां नहीं होती। सिंधु देश के सम्पर्क में आने पर ईरानियों के यहां 'स' का 'ह' तथा 'ध' का 'द' में परिवर्तन हो गया।

• 'हिन्दू' का 'उ' लुप्त होकर 'हिन्द' रह गया। आगे 'हिन्द' से 'हिंदी' बना।

नोट - भाषाविदों की उपर्युक्त मान्यताओं को रामविलास शर्मा ने निराधार बताकर आपत्ति ज़ाहिर की और अपनी प्रतिक्रिया में निम्न तर्क दिए -

• साल, सादगी, साज़, सागर आदि फारसी में 'स' से शुरू होने वाले कई शब्द मौजूद है जिनके उच्चारण में ईरानियों को दिक्कत नहीं होती हैं।

• ईरानी साहित्य में 'स' से शुरू होने वाले कुछ क्रियात्मक शब्द भी प्रचलित है। जैसे - साजीदन (बनाना), सख़न (तौलना) ।

• स - श युक्त या 'श' से आरम्भ होने वाले सैकड़ों फारसी शब्द है जिनके समानांतर भारतीय भाषाओं ने स - श का स्थान 'ह' को दे दिया है।

• 'स' का 'ह' में परिवर्तन 'कश्मीरी' में मिलता है। साथ ही हिन्दी, मराठी, गुजराती व राजस्थानी आदि भाषाओं में 'स' भी है और इसके स्थान पर 'ह' का भी उच्चारण होता है।

बच्चन सिंह ने रामविलास शर्मा की 'स' , ' ह' सम्बन्धी मान्यताओं को सही माना है सिवाए इस मान्यता के कि 'स' के लिए उच्चरित प्राकृत की 'ह' ध्वनि यात्रा करते हुए ईरान पहुंच गई। इसप्रकार सिंधु देश में 'स' के स्थान पर 'ह' का उच्चारण होने लगा।

कुछ इतिहासकारों के अनुमान के अनुसार हड़प्पा सभ्यता के पूर्व कोई ऐसी सभ्यता जिसमें सभ्य लोग सिंधु को 'हिन्दू' तथा 'सप्तसिंधु' को 'हत्त हिन्दू' बोला करते थे। ईरानियों को यह शब्द इसी सिंधु प्रदेश से प्राप्त हुआ।

• हिन्दुई, हिंदवी, हिन्दी शब्द का प्रयोग भिन्न - भिन्न समय में कभी ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, लाहौरी व कभी देहलवी के लिए प्रयोग हुआ।

• व्यापक क्षेत्र में हिन्दी भाषा और बोलियों के लिए १२ वीं – १३ वीं शताब्दी में हिन्दी, हिंदुवी व हिंदवी शब्द प्रयुक्त होने लगा था।

• जो लोग हिन्दी, हिंदुई को केवल खड़ी बोली समझते है, वे दिग्भ्रमित है।

• 'हिन्दी' का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है -

(क) हिन्द देश के निवासी

(ख) हिन्दी भाषा के रूप में (हिन्द के निवासियों को इकबाल ने अपनी पंक्ति "हिन्दी है हम वतन है हिंदोस्ता हमारा" में हिन्दी कहा है।

• उत्तर भारत में ११वीं - १२वीं - १३वीं शताब्दी के अंतर्गत हिंदुवी, हिंदवी अथवा हिन्दी का प्रयोग लोकभाषा के रूप में किया जाता था ।

• 'हिंदवी' शब्द का पहला प्रयोग अबू सईद के फारसी इतिहास (१०४९) में मिलता है ।

• 'लुगात - ए – हिंदवी' का अर्थ 'हिंदवी' है जिसे बुंदेलखंडी का पुराना रूप माना गया है।

• अमीर खुसरो की हिंदवी, खड़ी बोली का अंग था जिसे बाद में हिन्दी कहा जाने लगा।

• हिन्दी अन्य भाषाओं से दो अर्थों में भिन्न है -

(क) क्षेत्रीयता के अर्थ में

(ख) भाषा - समुच्चय के अर्थ में

• 'हिंदी' ने विशेष तौर पर अपभ्रंश की विरासत को सबसे अधिक ग्रहण किया है।

४ आदिकाल ; सामान्य परिचय

• आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार मुंज और भोज के समय में अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी का शुद्ध साहित्य के रूप में प्रयोग किया जाने लगा था। इसलिए इन्होंने हिन्दी साहित्य का आदिकाल संवत् १०५० से लेकर १३७५ तक महाराज भोज के समय से हम्मीरदेव के काल से कुछ पूर्व माना है। वहीं दूसरी ओर डॉ. बच्चन सिंह आचार्य शुक्ल के उक्त बातों में रोचक अंतर्विरोध को पाते हैं।इनके अनुसार एक ओर शुक्ल जी अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी का प्रचार भोज और मुंज के समय से स्वीकार करते है वहीं दूसरी ओर बौद्ध सिद्धों की भाषा को भी पुरानी हिन्दी मानते है। अतः दोनों पक्ष भ्रम पैदा करता है।

• आचार्य शुक्ल दोहरा नामकरण की पद्धति को अपनाकर इस काल को आदिकाल अथवा वीरकाल संबोधित करते हैं। साथ ही इसका काल विभाजन संवत् १०५० - १३७५ तक स्वीकार करते हैं। दूसरी ओर डॉ. बच्चन सिंह 'आदिकाल' के काल विभाजन को पुराना मानकर साहित्येतिहासकारों व इतिहासकारों के लिए अमान्य बताते हैं। इन्होंने 'आदिकाल' के नामकरण को भ्रामक बताकर इसकी तुलना बाबा आदम के जमाने से की है। साथ ही केवल भाषा की दृष्टि से १००० ई. से १४०० ई. तक के समय को महत्वपूर्ण माने हैं।

• आचार्य शुक्ल चारण कवियों द्वारा रचित वीरकाल के ग्रंथों को 'रसायण' शब्द से उद्धृत मानकर 'रासो' की संज्ञा देते हुए इसे प्रमाणिक मानते है। वहीं दूसरी ओर बच्चन सिंह रासो काव्य को मिथ्या मानकर इसे अप्रमाणिक कहते हैं।

• आदिकालीन प्रमुख बोलियों के रूप में आचार्य शुक्ल डिंगल, पिंगल, मैथिली, अवधी, खड़ी बोली व ब्रज को स्वीकार करते हैं। वही बच्चन सिंह प्रमाणिक रूप से केवल तीन बोलियों मैथिली (प्रयोक्ता - विद्यापति), अवधी (प्रयोक्ता - मुल्ला दाऊद) और खड़ी बोली (प्रयोक्ता - अमीर खुसरो) को स्वीकार करते हैं ।

ब्रज का मानक प्रयोग अपभ्रंश के अंतिम काल १४वीं - १५वीं शताब्दी के मध्य मानते हैं।

• आदिकाल में आचार्य शुक्ल के अनुसार धर्म, नीति, श्रृंगार व वीर सभी प्रकार की रचनाएं दोहों में मिलती है। ठीक इसी प्रकार बच्चन सिंह भी स्वीकार करते है साथ ही ये सोरठा को दोहबंध के अंतर्गत मानते हैं ।

• प्रबंध परंपरा को रासो की संज्ञा देते हुए आचार्य शुक्ल ने आदिकाल को 'वीरगाथाकाल' कहा है । वही बच्चन ने इस काल के नामकरण को असंगत मानते हुए आदिकाल को 'अपभ्रंश काल : जातीय साहित्य का उदय' कहा।

• आचार्य शुक्ल ने प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था को पुरानी हिन्दी कहा। वही बच्चन सिंह काल व प्रवृत्ति के बदलते रूप में अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहना, उपादेय नहीं समझते हैं।

• आदिकाल के अंतर्गत प्रमुख रूप से दो प्रकार की रचनाओं (अपभ्रंश की और देशभाषा / बोलचाल की) को स्वीकार करते हुए आचार्य शुक्ल कुल बारह पुस्तकों को प्रमाणिक मानते है। जिसके अंतर्गत साहित्यिक पुस्तकें केवल चार है -

(क) विजयपाल रासो

(ख) हम्मीर रासो

(ग) कीर्तिलता

(घ) कीर्तिपताका

देशभाषा काव्य की आठ पुस्तकें हैं -

खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचन्द प्रकाश, जयमयंक जस चंद्रिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियां तथा विद्यापति पदावली।

डॉ. बच्चन सिंह के समायोजित साहित्येतिहास में इस प्रकार का कोई वर्गीकरण नहीं मिलता है। इन्होंने बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो तथा परमाल रासो(आल्हखंड) को श्रृंगार और वीर - दर्पपूर्ण काव्य के अंतर्गत रखा है। जबकि विद्यापति व अमीर खुसरो को हिन्दी के जातीय कवि के अंतर्गत रखा है।

५. अपभ्रंश काव्य

•आचार्य शुक्ल के अनुसार अपभ्रंश के पद्यों का सर्वप्रथम साक्ष्य तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं के भीतर मिलता है वही बच्चन सिंह सर्वप्रथम कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' नाटक के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश के कई छंद मिलने की बात करते हैं।

• एक ओर आचार्य शुक्ल अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी में रचना मिलने की पुष्टि सातवीं शताब्दी में करते है वही दूसरी ओर बच्चन सिंह अपभ्रंश साहित्य में बोलचाल की भाषा का हस्तक्षेप सातवीं शताब्दी से मानते हैं।

• जहां आचार्य शुक्ल जी प्राकृत से विकृत होकर बोलचाल की भाषा के रूप में अपभ्रंश को किसी क्षेत्र विशेष का न बताते हुए सामान्यतः देशभाषा की संज्ञा देते हैं वहीं बच्चन सिंह इसे मूलतः पश्चिमी भारत की बोली मानते हैं।

• आचार्य शुक्ल अपभ्रंश की परम्परा को विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य तक मानते हैं वहीं बच्चन सिंह अपभ्रंश के अंतिम काल को १४ वीं – १५ वीं शताब्दी में स्वीकार करते हैं।

•एक ओर आचार्य शुक्ल प्रारंभ में अपभ्रंश के प्रचार - प्रसार का श्रेय जैन और बौद्ध धर्माचार्यों को देते हैं वहीं दूसरी ओर बच्चन सिंह अपभ्रंश के प्रचार - प्रसार का श्रेय केवल जैनियों को देते हैं।

• डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार अपभ्रंश की अधिकांश रचनाएं राजस्थान, गुजरात और बिहार - बंगाल में पाई गई जबकि आचार्य शुक्ल ने अपने साहित्येतिहास में मूल रूप से इस प्रकार की विवेचना नहीं की है।

६.बौद्ध सिद्ध साहित्य

• आचार्य शुक्ल अपने साहित्येतिहास में निश्चित रूप से बौद्ध सिद्धों का समय का ज़िक्र नहीं करते हैं जबकि डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार बौद्ध सिद्धों का समय ८ वीं से १३ वीं शताब्दी तक माना जाता हैं।

• आचार्य शुक्ल बौद्ध सिद्धों के क्षेत्र को देश के पूरबी भागों में बिहार से लेकर आसाम तक विस्तृत मानते हैं, ठीक इसी प्रकार बच्चन सिंह भी इनके कार्यक्षेत्र को बंगाल, असम, उड़ीसा व बिहार के पूर्वांचल भाग को बताते हैं।

• आचार्य शुक्ल बौद्ध सिद्धों की रचनाओं का सर्वप्रथम संग्रह हरप्रसाद शास्त्री के बंगला में रचित 'बौद्धगान ओ दोहा' को मानते हैं वहीं बच्चन सिंह के अनुसार बौद्ध सिद्धों के साहित्य संपादन का शुभारंभ पाश्चात्य प्राच्यविद् बेंडल द्वारा किया गया तथा इसके पश्चात् हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सिद्धों के चर्यागीतों व दोहाकोशों का 'बौद्धगान ओ दोहा' नाम से सम्पादन हुआ।

• आचार्य शुक्ल ने बौद्ध धर्म के विकृत होने से बौद्ध तांत्रिकों के मध्य चरम वामाचार होने की बात कही वहीं बच्चन सिंह के अनुसार बौद्ध सिद्धों द्वारा नैरात्मय या नि: स्वभाव को प्राप्त करने के लिए तांत्रिक वामाचार को अपनाया गया ।

• आचार्य शुक्ल ने अपने साहित्येतिहास में बौद्ध सिद्धों के समस्त चौरासी नामों को स्थान दिये है जिसमें तीन योगिनी के रूप में मणिभद्रपा, कनखलापा व लक्ष्मीकरा का ज़िक्र किया गया है वहीं बच्चन सिंह बौद्ध सिद्धों में केवल सरहपा, शबरपा, लुईपा, दारिकपा, डोंबिपा, भुसुकपा, टंटिपा, कण्हपा आदि को बताते हुए सरहपा व कण्हपा का विशेष महत्व समझते हैं।

•वज्रयानियों की लोकतंत्र साधनाओं में संभोग के लिए सेवन की जाने वाली स्त्रियों को आचार्य शुक्ल विशेष रूप से डोमिनी व रजकी संबोधित करते हैं वहीं बच्चन सिंह इन्हें भैरवी या योगिनी की संज्ञा देते हैं।

• आचार्य शुक्ल के अनुसार वज्रयान में प्रज्ञा और उपाय के योग से महासुख की दशा को प्राप्त करने की बात की गई वहीं बच्चन सिंह 'महासुखवाद' को साध्य बताते हुए इसमें सम्भोग की चरम परिणति के साथ जादू - टोना, मंत्र व अभिचार को भी शामिल करते हैं।

• बौद्ध सिद्धों की वामाचार साधना में आचार्य शुक्ल प्रज्ञोपाय (स्त्री - पुरुष) और पंचमकार (मद्य, मांस, मत्स्य, मैथुन, मुद्रा) को साधन तथा महासुखवाद को साध्य बताये वहीं बच्चन सिंह सिद्धों के निर्वाण के तीन अवयव के रूप में शून्य, विज्ञान व महासुख का ज़िक्र करते हैं।

• आचार्य शुक्ल वज्रयान में निर्वाण के सुख के स्वरूप को सहवास सुख के समान बताते हैं वहीं बच्चन सिंह निर्वाण के प्रमुख तत्वों में शून्य, विज्ञान व महासुख को शामिल करते हैं।

• आचार्य शुक्ल वज्रयान संप्रदाय में 'वज्रयान' को बौद्धधर्म के विकृत स्वरूप के रूप में बताते हैं वहीं बच्चन सिंह इसकी विस्तृत विवेचना करते हुए वज्रयान में 'वज्र' शब्द को हिन्दू - विचार पद्धति से अपनाया हुआ मानते हैं। साथ ही 'वज्र' की संज्ञा इंद्र का आयुध, शत्रु - विनाश की शक्ति, ऐश्वर्य का बोधक व अमरत्व का साधन आदि देते हैं। अंततः इसे बौद्धों का 'शून्यवाद' कहते है।

• आचार्य शुक्ल बौद्ध सिद्धों के विकृत स्वरूप के साथ - साथ उनके वीभत्स विधानों, साधना में अश्लीलता के रूप में मद्य व स्त्रियों का अबाध सेवन आदि केवल पतित व भोगवादी प्रवृति की विवेचना करते हैं जबकि बच्चन सिंह इनके अशिष्ट व विकृत स्वरूपों के साथ - साथ इनकी प्रगतिशील मानसिकता व सामाजिक भूमिका का भी ज़िक्र करते हैं जिनमें जाति - पाँति की प्रथा, ऊंच - नीच का भेद तथा बाह्याडंबर का खंडन आदि सम्मिलित है।

७.नाथपंथ साहित्य

• जिस प्रकार आचार्य शुक्ल नाथपंथ का मूल बौद्धों की वज्रयान शाखा को मानते हुए इन्हें सिद्धों के विकसित स्वरूप के रूप में परिभाषित करते हैं ठीक उसी प्रकार बच्चन सिंह भी नाथों को बौद्ध सिद्धों का परवर्ती विकास समझते हैं।

• आचार्य शुक्ल व बच्चन सिंह नाथपंथ के प्रवर्तक के रूप में सर्वविदित गोरखनाथ को स्वीकार करते हैं। साथ ही दोनों नाथों की संख्या ९ ही मानते हैं ।

• एक ओर आचार्य शुक्ल, राहुल सांकृत्यायन के अनुसार गोरखनाथ का समय दसवीं शताब्दी को अस्वीकार करते हैं वहीं बच्चन सिंह अभिनव के 'तंत्रालोक' के आधार पर उनका समय १० - ११वीं शताब्दी को तर्कसंगत मानते हैं।

• गोरखनाथ को 'गोरक्षपा' के रूप में आचार्य शुक्ल चौरासी सिद्धों में सम्मिलित मानते हैं जबकि बच्चन सिंह इस प्रकार के तथ्यों की पुष्टि नहीं करते ।

• आचार्य शुक्ल के अनुसार गोरखनाथ पतंजलि के उच्च लक्ष्य तथा ईश्वर प्राप्ति के उद्देश्य से हठयोग का प्रवर्तन किये जबकि बच्चन सिंह नाथपंथियों के योगमार्ग के अतंर्गत हठयोग की जटिल प्रक्रिया को संदर्भित करते हैं।

• पितांबरदत्त बड़थ्वाल के गोरख बनियों का संग्रह 'गोरखबानी' में संग्रहित 'सबदी' का समय शुक्ल जी १४ वीं शताब्दी स्वीकार करते हैं जबकि बच्चन सिंह के अनुसार यह १५ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध हो ही नहीं सकती।

•आचार्य शुक्ल जी सिद्धों और नाथों की रचनाओं को साहित्य की कोटि में स्वीकार नहीं करते ठीक उसी प्रकार बच्चन सिंह साहित्य की बुनियादी शर्तों यथा - संवेदना, कल्पना तथा आंतरिक संरचना के अभाव में दोनों पंथों की रचनाओं को असाहित्यिक स्वीकार करते हैं।

• बच्चन सिंह गोरखनाथ के नाथ संप्रदाय को सिद्धमत, सिद्धमार्ग, योगमार्ग, योगसम्प्रदाय व अवधूत मत की संज्ञा देते हैं जबकि आचार्य शुक्ल इसप्रकार नाथ संप्रदाय के उपनामों की विवेचना नहीं करते हैं।

• नाथ संप्रदाय के मार्ग प्रवर्तकों में आचार्य शुक्ल ... नागार्जुन, चर्पट और जलंधर को सिद्धों की परंपरा में भी बताते हैं जबकि बच्चन सिंह के साहित्येतिहास में इस प्रकार के तथ्य नहीं मिलते।

• शुक्ल जी के अनुसार नाथ संप्रदाय ईश्वरोपासना के बाह्यविधानों के प्रति उपेक्षा प्रकट कर घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर बल दिए जबकि बच्चन सिंह ने नाथों के ईश्वरवाद को सगुण ईश्वर के प्रति आस्थावान न होकर निरंजन के प्रति आसक्ति की बात कही।

• गोरखनाथ की वाणी को आचार्य शुक्ल के साथ - साथ बच्चन सिंह द्वारा सधुक्कड़ी भाषा जिसमें खड़ी बोली लिए राजस्थानी का समावेश हो, को स्वीकार किया गया।

• डॉ. बच्चन सिंह उत्तर भारत के नाथ पंथी मठों के महंतों को 'पीर' संबोधित करते हैं जबकि शुक्ल जी इस प्रकार की संज्ञा नहीं देते हैं।

• आचार्य शुक्ल के अनुसार कबीर की 'साखी' व 'बानी' तथा सधुक्कड़ी भाषा नाथपंथियों से प्राप्त हुई जबकि बच्चन सिंह ने कबीर व गोरखनाथ की

सधुक्कड़ी भाषा में भिन्नता बतलाई।

८. जैन साहित्य

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने साहित्येतिहास ग्रंथ में आदिकालीन जैन साहित्य को बहुत ही सीमित स्थान देते हैं। इन्होंने अपने धर्म के प्रति आरूढ़ धार्मिक जैनाचार्यों को जिनके काव्यरचनाओं में साहित्यिक सौष्ठव की बात की जाती है, केवल सांप्रदायिक शिक्षा मानकर साहित्यिक काव्यधारा की परंपरा से बाहर कर दिया। इनके इस व्यवहार पर डॉ. बच्चन सिंह टिप्पणी करते हैं - **"रामचन्द्र शुक्ल के समय तक जैन अपभ्रंश काव्यों में से बहुत कम प्रकाश में आये थे। अतः उन्होंने अपने इतिहास में कुछ ही कवियों का उल्लेख किया है। पर आश्चर्य है कि उन्होंने न तो उनकी साहित्यिकता के संबंध में कुछ कहा और न भाषा पर ही टिप्पणी की।हेमचंद्र के व्याकरण में उद्धृत दोहों के काव्य - सौंदर्य के संबंध में उनके जैसे रसवादी आचार्य का चुप रहना अखरता है। संभव है, जैन काव्य होने के कारण उन्होंने बौद्ध सिद्धों की रचनाओं की तरह इन्हें भी कोरा सांप्रदायिक ग्रंथ मान लिया हो।" ५**

यद्यपि आचार्य शुक्ल धर्म संबंधी रचनाओं को छोड़कर सामान्य साहित्य के रूप में कुछ जैनाचार्यों यथा - हेमचंद्र, सोमप्रभ सूरि तथा मेरुतुंग आदि की विवेचना करते है जिसका सीमित तुलनात्मक अध्ययन आगे किया गया है।

डॉ. बच्चन सिंह के साहित्येतिहास में जैन काव्यों को उचित स्थान प्रदान करने के साथ इनकी पर्याप्त विवेचना भी की गई है। जिनमें से कुछ महत्पूर्ण तथ्य निम्नांकित है -

• आदिकाल के समूचे काल खंड में डॉ. बच्चन सिंह जैन काव्यों को ही केवल प्रमाणिक मानते हैं। इनका मुख्य केंद्र मध्यप्रदेश के पश्चिमोत्तर भाग में बताते है।

• चूंकि जैन काव्य मूलतः धार्मिक ग्रंथ था परंतु उनमें काव्य तत्व पर्याप्त था।

• डॉ. बच्चन सिंह जैन साहित्य को काव्य - रूप की दृष्टि से कुल पांच भागों में विभाजित करते हैं, जो इस प्रकार है -

(क) पुराण काव्य (ख) चरित काव्य (ग) कथा काव्य (घ) रास काव्य और (ङ) रहस्य काव्य

• पुराण काव्य के अंतर्गत प्राकृत में रचित विमलदेव सूरि तथा अपभ्रंश में रचित स्वयंभू की 'पउम चरिउ' का उल्लेख किया गया है जिसका आधार रामकथा काव्य है।

• रामकव्य के दूसरे महाकवि के रूप में पुष्पदंत का भी उल्लेख मिलता है जिनके अक्खड़ स्वभाव तथा सांप्रदायिकता के प्रति अति आग्रह के कारण उन्हें 'अभिमान मेरु' बताया गया है।

• इन सब के अतिरिक डॉ. बच्चन सिंह अन्य काव्य के अंतर्गत चरित काव्य के रूप में हरिभद्र सूरि का 'नेमिनाथ चरिउ' , विनयचंद्र सूरि की 'नेमिनाथ चौपई' के धनपाल की 'भविष्यत कहा' को लौकिक चरित काव्य के रूप में उल्लेख करते हैं। वहीं आध्यात्मिक सांप्रदायिक ग्रंथ के रूप में पाहुड़ दोहा, परमात्म प्रकाश व योगसार को स्थान देते हैं।

• एक ओर जहां आचार्य शुक्ल सामान्य साहित्य के अंतर्गत हेमचंद्र व मेरुतुंग आदि का उल्लेख करते हैं वहीं दूसरी ओर डॉ. बच्चन सिंह श्रृंगार और वीर - दर्पपूर्ण काव्य के अंतर्गत हेमचंद्र, मेरुतुंग के साथ अद्दहमाण/ अब्दुर्रहमान आदि को स्थान देते हैं।

• अपने समय के सबसे प्रसिद्ध जैनाचार्य के रूप में हेमचंद्र को बताते हुए आचार्य शुक्ल उनके व्याकरण ग्रंथ 'सिद्ध हेमचंद्र शब्दानुशासन' को एक बड़ा भारी ग्रंथ कहते हैं तथा उसमें भाषा के रूप में संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश का समावेशन मानते हैं वहीं दूसरी ओर डॉ. बच्चन सिंह उक्त व्याकरण ग्रंथ की भाषा को केवल प्राकृत व अपभ्रंश के अंतर्गत मानते हैं।

.९ रासो काव्य

• एक ओर आचार्य शुक्ल आदिकालीन रासो काव्य को देशभाषा प्रकरण के अंतर्गत रखते हुए 'बीसल देव रासो' के आधार पर 'रासो' शब्द की उत्पति 'रसायण' शब्द से समझते है वहीं दूसरी ओर डॉ. बच्चन सिंह रासो काव्य को श्रृंगार और वीर - दर्पपूर्ण काव्य के अंतर्गत रखते हुए 'रासो' शब्द की उत्पत्ति लोकप्रचलित नाट्य 'रास' से उद्धृत मानते हैं।

•आचार्य शुक्ल रासो काव्य को 'वीरगाथा' की संज्ञा देते हुए इसे दो रूप में विभाजित करते हैं - प्रबंध काव्य के साहित्यिक रूप में तथा वीर गीतों के रूप में। जिसमें प्रमुखतः साहित्यिक प्रबंध के रूप में 'पृथ्वीराज रासो' तथा वीरगीत के रूप में 'बीसलदेव रासो' का उल्लेख करते हैं। वहीं बच्चन सिंह रासो काव्य को केवल सामंती चरित्र का अनिवार्य अंग बताते हुए इसके वर्गीकरण का प्रयास नहीं करते हैं।

• आचार्य शुक्ल के साहित्येतिहास में रासो काव्य के अंतर्गत खुमानरासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो, जयचन्द प्रकाश, जयमयंक - जसचंद्रिका तथा रणमल्ल छंद की विस्तृत विवेचना मिलती है वहीं दूसरी ओर डॉ. बच्चन सिंह रासो काव्य के अंतर्गत बीसलदेव रासो,पृथ्वीराज रासो, आल्हखंड (परमाल रासो), जयचन्द प्रकाश तथा जयमयंक - जसचंद्रिका की विस्तृत विवेचना करते हैं।

(क) बीसलदेव रासो

• एक ओर आचार्य शुक्ल 'बीसलदेव रासो' के रचयिता नरपति नाल्ह कवि को विग्रहराज चतुर्थ के समकालीन मानते हैं। वहीं आचार्य शुक्ल नाल्ह कवि को विग्रहराज तृतीय का समसामयिक बताते हैं।

• आचार्य शुक्ल 'बीसलदेव रासो' का निर्माणकाल विक्रम संवत् १२१२ बताते हैं वहीं बच्चन सिंह इनके रचनाकाल को निश्चित नहीं मानते।

• 'बीसलदेव रासो' को आचार्य शुक्ल काव्य ग्रंथ न मानते हुए केवल गाने के लिए रचा गया स्वीकार करते हैं वहीं बच्चन सिंह भी इसे विरह - गीत काव्य कहते हुए ऐतिहासिक तथ्य, रचनाकाल व भाषा के आधार पर अप्रमाणिक मानते हैं।

(ख) पृथ्वीराज रासो

• चंदबरदाई द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य बताते हुए आचार्य शुक्ल इसे पूर्णतः जाली ग्रंथ की संज्ञा देते हैं वहीं बच्चन सिंह भी 'पृथ्वीराज रासो' के चारों रूपान्तरों के साथ इसे अप्रमाणिक मानते हैं।

• एक ओर 'पृथ्वीराज रासो' को आचार्य शुक्ल 'हिन्दी का प्रथम महाकाव्य' की संज्ञा देते हैं वहीं दूसरी ओर डॉ. बच्चन सिंह इसे 'राजनीति की महाकाव्यात्मक त्रासदी' के रूप में देखते हैं।

• व्याकरणिक विकृति के साथ भाषा की कसौटी पर अप्रमाणिक मानते हुए आचार्य शुक्ल 'पृथ्वीराज रासो' में प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के साथ - साथ रूपों व विभक्तियों में पुराने ढंग को पाते हैं वहीं बच्चन सिंह भी भाषागत अव्यवस्था को स्वीकार करते हुए 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा ब्रजमिश्रित राजस्थानी अथवा डिंगल मानते हैं।

(ग)आल्हखण्ड (परमालरासो)

• परमाल रासो के रचनाकाल को डॉ. बच्चन सिंह अंग्रेज़ों के आगमन के बाद १८वीं शताब्दी में मानते हैं वहीं आचार्य शुक्ल इसके कालखंड की व्याख्या नहीं करते हैं।

• आचार्य शुक्ल 'आल्हखण्ड' को वीर गीतों के संग्रह के रूप में विवेचित करते हैं वहीं बच्चन सिंह इसे लोकप्रिय युद्धकव्य कहते हैं।

• आचार्य शुक्ल 'आल्हा' का केंद्र बैसवाड़ा को मानते हैं वहीं बच्चन सिंह इसके प्रमुख क्षेत्र में बैसवाड़ा, पूर्वांचल तथा मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड का उल्लेख करते हैं।

• डॉ. बच्चन सिंह 'आल्हखण्ड' में कुल ५२ छोटी - बड़ी लड़ाइयों का ज़िक्र करते हैं जिनमें युद्धों का मुख्य कारण विवाह, प्रतिशोध की भावना और लूट को बताते हैं वहीं आचार्य शुक्ल अपने साहित्येतिहास में इस प्रकार की जानकारी नहीं देते हैं।

• एक ओर आचार्य शुक्ल सामान्य साहित्य के अंतर्गत अतिरिक्त वीर गाथाओं की परम्परा के रूप में दो कवि 'विद्याधर' तथा 'शारंगधर' का उल्लेख करते हैं वहीं दूसरी ओर बच्चन सिंह इन्हें 'प्राकृत पैंगलम' और 'हिंदी के कवि' के अंतर्गत बताते हैं।

१०. फुटकल रचनाएँ अथवा हिन्दी के कवि

•आचार्य शुक्ल अपने साहित्येतिहास के प्रकरण ४ में अमीर खुसरो तथा विद्यापति का उल्लेख फुटकल रचनाओं के अंतर्गत करते हैं वहीं डॉ. बच्चन सिंह विद्यापति, अमीर खुसरो के साथ मौलाना दाउद की विवेचना 'हिंदी के जातीय कवि' के अंतर्गत करते हैं।

• डॉ. बच्चन सिंह अपने साहित्येतिहास में आधुनिक आर्यभाषाओं के नमूने के रूप में तीन उपलब्ध पुस्तक राउल बेलि, उक्ति - व्यक्ति प्रकरण तथा वर्णरत्नाकर की विवेचना करते हैं परंतु आचार्य शुक्ल के साहित्येतिहास में इसप्रकार की व्याख्या का अभाव है।

११. निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य के साहित्येतिहास लेखन की परंपरा में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का ' हिन्दी साहित्य का इतिहास ' पूर्ववर्ती असंगतों को दूर कर हिंदी साहित्य का एक व्यवस्थित प्रतिनिधि ग्रंथ के रूप में प्रसिद्धि पाई है। वहीं दूसरी ओर हिन्दी साहित्य के विद्वानों में सुप्रसिद्ध साहित्यकार व आलोचक डॉ. बच्चन सिंह हुए जो अपने साहित्येतिहास ' हिंदी साहित्य का दूसरा

इतिहास ' में आचार्य शुक्ल की मौलिक महत्ता तथा हिन्दी साहित्य में उनके योगदान को आत्मसात् करने के साथ साहित्य की रूढ़िगत परम्परा को तोड़ते हुए हिन्दी साहित्य का नवनिर्माण कर पाठकों के लिए एक नवीन दृष्टि प्रदान करते हैं।

आदिकाल के अंतर्गत दोनों विद्वानों के मतांतरों का यथासंभव तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। जिससे पाठक गणों को आदिकाल की पृष्ठभूमि को समझने में दो दृष्टिकोणों की समानता व असमानता के साथ साहित्य के संगत तथा असंगत तथ्यों का समालोचनात्मक अध्ययन करने में सुविधा होगी ।

संदर्भ सूची :-

०१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन - प्रभात प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली - ११०००२, संस्करण - २०२४, पृष्ठ सं० - ५ व ६

०२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन - प्रभात प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली - ११०००२, संस्करण - २०२४, पृष्ठ सं० - ६

०३ हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, प्रकाशन - राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, दिल्ली - ११०५१, संस्करण - सोलहवां, जुलाई २०२२, पृष्ठ सं० - ७

०४ हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, प्रकाशन - राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, दिल्ली - ११०५१, संस्करण - सोलहवां, जुलाई २०२२, पृष्ठ सं० - ८

०५ हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, प्रकाशन - राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, दिल्ली - ११०५१, संस्करण - सोलहवां, जुलाई २०२२, पृष्ठ सं० - ३८